प्रवचन नं. २४५, गाथा १६४-१६६ दिनाङ्क ०५-०६-१९७९,
मंगलवार, ज्येष्ठ शुक्ल १०

समयसार, १६४-१६५ गाथा, इसका भावार्थ। **ज्ञानावरणादि कर्मों के आस्रवण का (-आगमन का) कारण..** क्या कहते हैं? नये कर्म जो ज्ञानावरणीयादि बँधते हैं, उनका **कारण तो मिथ्यात्वादि कर्म के उदयरूप पुद्गल-परिणाम हैं,..** पूर्व के जो मिथ्यात्वादि कर्म के परिणाम हैं, वे जड़ के परिणाम इस जड़ को लाने में निमित्त हैं। आहाहा! यह कहाँ विचारे कब? यह आत्मा है, वह तो शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द है। तब उसे नये कर्म आते हैं न? (तो कहते हैं) वह तो पूर्व के पुद्गलकर्म जो जड़ पड़े हैं, पूर्व के बँधे हुए (पड़े हैं), वे कर्म नये आने का निमित्त है। नये आते हैं परिणाम तो उनके उपादान से। नये कर्म आते हैं, वे तो उनके उपादान से, परन्तु उसका निमित्त पूर्व के जड़कर्म हैं। एक बात हुई।

(इसलिए) **इसलिए वे वास्तव में आस्रव हैं।** पूर्व के कर्म का उदय, बाँधे हुए जो कर्म है, उनका जो उदय, वह नये कर्म के बन्ध का कारण है। **और उनके कर्मास्रवण के निमित्तभूत होने का निमित्त..** अर्थात् जो पुराने कर्म हैं, नये कर्म को आने का निमित्त; नये कर्म आते हैं, उनके उपादान से, परन्तु यह निमित्त है। परन्तु इस निमित्त के भी नये आने का कारण कब हो? कि जीव राग-द्वेष और मोह करे तब। जीव (के) राग-द्वेष और मोह, वे भाव पुराने कर्म को निमित्त होवे, तब पुराना कर्म नये कर्म को निमित्त होता है। समझ में आया? थोड़ा कुछ अभ्यास होवे तो खबर पड़े। इस तत्त्व की खबर बिना अनादि से चार गति में चौरासी के अवतार में भटकता है। आहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा तो पूर्ण शुद्ध और चिद्घन है, तो भी उसने पूर्व के बाँधे हुए कर्म, वे नये आने का निमित्त होता है। वे निमित्त होते कब हैं? कि जीव स्वयं राग-द्वेष और अज्ञान करे तो पुराने कर्म को निमित्त होता है, तो पुराना कर्म नये को बाँधता है। आहाहा! इतना याद रखना (कठिन पड़े), यह तो अभी साधारण बात है। अभ्यास नहीं होता। अनादि से चौरासी के अवतार में भटकता है। चौरासी लाख योनि में एक-एक उत्पत्ति के स्थान में अनन्त बार उत्पन्न हुआ। हेतु मिथ्यात्व है। अज्ञान आगे कहेंगे।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व, वही अज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अज्ञान, मिथ्यात्व। वह लोहचुम्बक का दृष्टान्त देते हैं न! बाद में आयेगा कि लोहचुम्बक है और सुई है। उस सुई में लोहचुम्बक के संसर्ग से सुई में स्वयं में पर्याय ऐसी उत्पन्न होती है कि (वह) लोहचुम्बक में खिंच जाती है। क्या कहा? जो लोहचुम्बक है, वह सुई को खींचती है, वह कैसे? कि सुई स्वयं लोहचुम्बक के संसर्ग में आने पर सुई में स्वयं में उस ओर गति हो, वैसा भाव उत्पन्न होता है। आहाहा!

इसी प्रकार नये कर्म बाँधने में पुराने कर्म का निमित्त होता है, कब? कि जीव स्वयं राग-द्वेष-मोह (करता है), वह कर्म के निमित्त के संसर्ग से; निमित्त से नहीं, किन्तु अपना स्वभाव शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द है, उसका परिचय छोड़कर पुराने कर्म के निमित्त के परिचय में आता है, इसलिए उसे अपने में मिथ्यात्वभाव उत्पन्न होता है और मिथ्यात्वभाव, वह राग-द्वेष-मोह को करता है और वे राग-द्वेष-मोह पुराने कर्म को निमित्त होने पर नये कर्म बँधते हैं। अब इतना याद रखना। है?

उनके.. अर्थात् पुराने कर्म को भी नये आने का निमित्त तब होता है कि **उनके कर्मास्रवण के निमित्तभूत होने का निमित्त जीव के रागद्वेषमोहरूप..** जीव को राग-द्वेष-मोहरूप **(अज्ञानमय) परिणाम..** भाषा देखो! अज्ञान है, उसे स्वरूप का भान नहीं है। आहाहा! प्रभु! चैतन्यस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है, उसका इसे अज्ञान है। उस अज्ञान के कारण राग-द्वेष-मोह का कर्ता होता है और इससे राग-द्वेष-मोह पूर्व के कर्म को निमित्त हों, तब पूर्व का कर्म नये को निमित्त होता है। आहाहा! चिमनभाई! पकड़ में आता है? अरे रे! क्या? संसार में कैसे भटका, इसकी बात करते हैं। यह चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करके दु:खी है। करोड़ोंपति, अरबोंपति जीव हो, वह महादु:खी बेचारा भिखारी है, क्योंकि परवस्तु माँगता है।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि आत्मा में कर्म निमित्त है। उसका संसग करने से, परिचय करने से आत्मा में अपने स्वभाव का अज्ञान उत्पन्न होता है। यह अज्ञान उन राग-द्वेष-मोह का कर्ता होता है। उन राग-द्वेष-मोह का कर्ता होता है। वे भाव पुराने कर्म को निमित्त होते हैं, तब पुराना कर्म नये को निमित्त होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : राग-द्वेष-मोह भाव नये कर्म को निमित्त होता है या पुराने कर्म को ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराने कर्म को। कहा नहीं ? कल भी कहा था, अभी भी कहते हैं। पुराना कर्म निमित्त होता है, कब ? पुराना कर्म नये को निमित्त कब होता है ?—कि पुराने कर्म के निमित्त का आत्मा परिचय करने पर, अपने स्वभाव को भूलकर, उस ओर के लक्ष्य में अज्ञान करके, और अज्ञान के कारण राग-द्वेष-मोह का कर्ता होता है; वे राग-द्वेष-मोह पुराने कर्म को निमित्त होते हैं, और पुराना कर्म नया आने को निमित्त होता है। आहाहा! ऐसा है। अरे! तत्त्व की खबर नहीं होती। अनादि काल से बेचारा भटककर मरता है।

मुमुक्षु : इसका अर्थ यह हुआ कि जिसे पुराने कर्म हों, उसे ही नये कर्म आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नये कर्म; पुराने कर्म हो, उसे (आते हैं), परन्तु परिचय करे उसे। पुराने कर्म के साथ परिचय करे, उस ओर लक्ष्य करे और अपने लक्ष्य को छोड़े, ऐसा अज्ञानभाव राग-द्वेष-मोह का कर्ता होकर, वे राग-द्वेष-मोह पुराने कर्म को निमित्त होते हैं और पुराने कर्म, नये आने को निमित्त होते हैं। इतनी तो (स्पष्ट) बात है, बापू! आहाहा!

यहाँ कहने का आशय तो ऐसा है कि भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु है, उसका वह ज्ञान करता नहीं, उसका आदर करता नहीं, उसकी श्रद्धा की उसे खबर नहीं। समझ में आया ? आस्रव में पहले यह लिया है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु ज्ञातादृष्टा अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय गुण से भरपूर भण्डार है। उसका अज्ञानी ज्ञान नहीं करता, उसका आदर नहीं करता, उसे अपना नहीं मानता, उसे उपादेयरूप से स्वीकार नहीं करता। वह जीव पुराने कर्म के निमित्त के संग में अज्ञानभाव से, अपने अज्ञान के भाव से, राग-द्वेष-मोह का कर्ता होता है, तब पूर्व के कर्म को यह निमित्त होता है, तब पूर्व का कर्म नये आने को निमित्त होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग जिनेश्वर का मार्ग अपूर्व है। आहाहा! विशिष्टता तो क्या की है।

अज्ञानभाव से, अज्ञान रखा है न ? **और उनके कर्मास्रवण के निमित्तभूत होने का निमित्त जीव के रागद्वेषमोहरूप (अज्ञानमय) परिणाम हैं..** देखा ? मिथ्यात्व—मोह के परिणाम हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय गुण का सागर भण्डार आत्मा है। उसे न पहिचानकर, उसका आदर न करके, कर्म का जड़पना जो पूर्व

का है, उसकी ओर दौड़कर, जुड़कर, लक्ष्य करके स्वयं अज्ञानपना, मिथ्यात्वपना खड़ा करता है, वह मिथ्यात्वश्रद्धा, राग-द्वेष का कर्ता होता है और वे राग-द्वेष तथा मोह, पुराने कर्म को नये आने में निमित्त होते हैं। आहाहा!

अरे रे! 'अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान।' भान बिना चौरासी के अवतार किये। अरबोंपति अनन्त बार हुआ, राजा अनन्त बार हुआ परन्तु मरकर वापस नरक में गया। ये सेठ मरकर जाएँ नरक में या पशु में अवतरेंगे।

मुमुक्षु : सेठ नरक में जाए, यह बात कठोर पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ माँस, शराब खाते (पीते) होंवे, तब तो नरक में जाएँ, परन्तु माँस, शराब न खाते (पीते) हों तो मात्र कषायभाव, पूरे दिन धन्धे में पाप ही करते हैं। धन्धा.. धन्धा.. धन्धा.. यह किया और यह किया और यह किया। मात्र पाप ही करते हैं और उससे निवृत्त हो तो छह-सात घण्टे सोवे, उसमें से एक-दो घण्टे स्त्री, पुत्र के साथ प्रसन्न करने में रुक जाए। पूरे दिन यह तो पाप ही करता है। अर र! उसे ऐसे पाप में यह माँस और शराब खाता (पीता) न हो तो वह पाप ऐसा है कि उसे तिर्यंचगति में ले जाएगा।

आहाहा! यहाँ तो जरा ऐसी बात आयी थी कि तिर्यंचगति, फिर मूल तो तिर्यंचगति निगोद है। भाई! ऐसा कहा न कि मुनि वस्त्र का एक धागा रखकर, हम मुनि हैं, ऐसा माने और मनावे और उसे माननेवाले मिथ्यादृष्टि। वस्त्रसहित साधु माने, ऐसे मिथ्यादृष्टि उस निगोद में जानेवाले हैं। ऐसा शास्त्र में पाठ है। निगोद है, वह तिर्यंचगति का एक भाग है।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व है, इसलिए निगोद में तो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (निगोद), वह तिर्यंच है, तिर्यंच। आहाहा! अरे रे! अपनी जाति को जाना नहीं और जो उसमें नहीं, इसका नहीं—ऐसे पुण्य और पाप के भाव और पुण्य-पाप के बाह्य फल, पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार, बँगला-मकान जो पर हैं, उन्हें मेरा मानकर मिथ्यात्व से राग-द्वेष का कर्ता होकर नये कर्म बाँधने में पुराने कर्म को निमित्त होता है। आहाहा! क्या शैली?

वह अज्ञानमय परिणाम है। आहाहा! वस्तु के भान बिना वे परिणाम है। आहाहा! भगवान ज्ञातादृष्टा प्रभु, और ऐसे जीव को अतीन्द्रिय अनन्त गुण का बड़ा भण्डार है,

जिनकी संख्या का पार नहीं, ऐसे गुण का भण्डार प्रभु, उसका जिसे अज्ञान है अर्थात् जिसके स्वरूप की उसे खबर नहीं, ऐसा जो अज्ञानी राग-द्वेष-मोह को करता है, वे राग -द्वेष-मोह पुराने कर्म को निमित्त होते हैं और पुराना कर्म नये आने को निमित्त होता है। आहाहा! मूल कारण वह अज्ञान लिया, भाई!

आहाहा! धीरे से समझने की बात है, बापू! जो बात इन्द्र और गणधर सुनने आते होंगे, वह बात कैसी होगी, भाई! इन्द्र बड़े बत्तीस लाख विमान का स्वामी! एक-एक विमान में (कितनों में ही तो) असंख्य देव! ऐसे बत्तीस लाख विमान का (स्वामी) शकेन्द्र, एक भव में मोक्ष जानेवाला है। मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है, वह भगवान की वाणी सुनने आता होगा, वह वाणी कैसी होगी! यह तुम दया पालन करो, व्रत करो, ऐसी बातें (होंगी)? (ऐसी बातें तो) कुम्हार भी करता है। आहाहा!

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की वाणी में ऐसा आया है, उसे सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु! तेरा स्वरूप का अज्ञान... आहाहा! और उस अज्ञान के कारण पुराने कर्म में लक्ष्य जाता है, उस पुराने कर्म में तेरे अज्ञानभाव के राग-द्वेष निमित्त होने पर नये आठ कर्म—ज्ञानावरणादि बँधते हैं। आहाहा! और उनके कारण यह चार गति में भटकता है। नरक और निगोद में (जाता है)। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में एक निगोद के भाव, लहसुन और प्याज में एक अन्तर्मुहूर्त ४८ मिनिट के अन्दर में अठारह भव करता है। मरकर जन्मे, ऐसे (भव) अनन्त बार किये। भाई! वह भूल गया है।

यह कल आया नहीं था? वादिराज का! (कहते हैं), प्रभु! जब पूर्व का दुःख याद करता हूँ... यह मुनि कहते हैं। आहाहा! भावलिंगी सन्त, जिन्हें एक-दो भव में केवल(ज्ञान) लेना है। वे वादिराज मुनि ऐसा कहते हैं, प्रभु! मैं पूर्व के दुःख को याद करूँ, वहाँ कँपकँपी आती है। आया था न, भाई! चोट लगती है। आयुध की चोट लगती है। आहाहा! प्रभु की स्तुति करते हुए कहते हैं, प्रभु! मेरे पूर्व के दुःख—नरक के, निगोद के, अनन्त-अनन्त भव में सहे, प्रभु! उन्हें याद करूँ तो आयुध—जैसे शस्त्र / तलवार की चोट लगे, शस्त्र की चोट लगे, वैसी चोट लगती है। आहाहा! यह तो पहले भी कहा था, परन्तु पड़ी किसे है? यह बाहर में धूल... आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार और यह पैसा, इज्जत-कीर्ति और धन्धा... पूरे दिन अकेला पाप। धर्म तो नहीं, परन्तु इसे तो पुण्य भी नहीं। आहाहा!

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं, प्रभु! तुझे नये कर्म जो बँधते हैं, उनका कारण क्या? कि, उनका कारण पुराने कर्म का निमित्त है, वह (है)। वह निमित्त है, वह कारण कैसे होता है? कि, उस निमित्त का परिचय-संग करके, स्वभाव का संग छोड़ा... आहाहा! और स्वरूप का अज्ञान उत्पन्न किया, उस अज्ञानभाव से पुण्य और पाप का कर्तापना आया, इससे उन पुराने कर्म को निमित्त वे होते हैं। इसलिए पुराना कर्म नये को लाता है। आहाहा! और वह आठ कर्म बाँधकर चार गति में भटकता है। आहाहा! अरे रे! है?

(अज्ञानमय) परिणाम हैं.. मुझे तो इसमें दूसरा कहना था। लोहचुम्बक में से कहना है कि जो सुई खिंचती है, उस सुई में अपनी पर्याय हुई है। उस सुई ने लोहचुम्बक का संग-संसर्ग किया, स्वयं अपने से किया, इसलिए उसमें खिंचने की अपने में योग्यता हुई है। लोहचुम्बक उसे खींचती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार पुराने कर्म नये को लाते हैं और पुराने कर्म तुझे राग-द्वेष कराते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान अतीन्द्रिय शुद्ध प्रभु को तूने याद नहीं किया, उसे स्पर्श नहीं किया, उसका तूने ध्यान नहीं किया। यह क्या अन्दर अनन्त अतीन्द्रिय गुण का भण्डार महा भगवान अन्तरलक्ष्मी पड़ी है। अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त जीवत्वशक्ति आदि अनन्त शक्तियों का सागर भगवान (है), उसे तूने याद नहीं किया और कर्म को याद किया। आहाहा! आहाहा! जो तुझमें नहीं है, उसे तूने याद करके अज्ञानरूप से राग-द्वेष खड़े किये और उन राग-द्वेष और मोह का कर्ता अज्ञानरूप से हुआ। आहाहा! इससे तुझे नये कर्म बाँधने में पुराने कर्म निमित्त हुए। अब, ऐसा है। बनियों को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती और ऐसी अटपटी बातें। आहाहा! अरे रे!

इसलिए रागद्वेषमोह ही आस्रव हैं। देखा? पुराने कर्म को आस्रव कहा था। दूसरी लाईन में। **वास्तव में आस्रव हैं।** ऐसा कहा था परन्तु वास्तव में तो राग-द्वेष और मोह ही आस्रव है। स्वरूप का अज्ञान और अज्ञान से उत्पन्न हुए राग-द्वेष-मोहभाव, वे ही नये कर्म को लाने का कारण है। आहाहा! **इसलिए रागद्वेषमोह..** अर्थात् मिथ्यात्व, भ्रमणा, अज्ञान, वही **आस्रव हैं। उन रागद्वेषमोह को चिद्विकार भी कहा जाता है।** उस आत्मा के अज्ञान से उत्पन्न हुआ मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, वह चिदाभास है। वह आत्मा

नहीं परन्तु आत्मा का चिदाभास है। उसे चिद्विकार भी कहा जाता है। वह आत्मा का विकार है, ऐसा भी कहा जाता है। आहाहा!

वे रागद्वेषमोह जीव की अज्ञान-अवस्था में ही होते हैं। देखा? वे राग-द्वेष और मोह जीव को भगवान के स्वरूप के भान बिना अज्ञान अवस्था में वे राग-द्वेष-मोह होते हैं। आहाहा! **मिथ्यात्वसहित ज्ञान ही अज्ञान कहलाता है।** देखा? स्वयं प्रभु पूर्ण है, उसे विपरीत मानने से—मैं रागवाला हूँ, पुण्यवाला हूँ, मैं पैसेवाला हूँ, मैं स्त्रीवाला हूँ, मैं पुत्रवाला हूँ - ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। आहाहा! उस मिथ्यात्वभाव **सहित ज्ञान ही अज्ञान कहलाता है।** अज्ञान क्यों कहा? कि वह मिथ्यात्वभाव है तो इसे अज्ञान कहा। आहाहा! और वह अज्ञानभाव राग-द्वेष-मोह का कर्ता होने पर पुराने कर्म को वह निमित्त होता और पुराना कर्म नये आने में निमित्त होता है। ऐसा अब सब... अभी तो अभ्यास नहीं, सुनने का अभ्यास नहीं होता। समझने की तो कहाँ (बात करना)? आहाहा! अरे रे!

रागद्वेषमोह जीव की अज्ञान-अवस्था में ही होते हैं। मिथ्यात्वसहित ज्ञान ही अज्ञान कहलाता है। इसलिए मिथ्यादृष्टि के अर्थात् अज्ञानी के ही रागद्वेषमोहरूप आस्रव होते हैं। देखा? ज्ञानी (कि जिसे) आत्मा का भान है, उसे राग-द्वेष-मोह है ही नहीं। जो अल्प रागादि होते हैं, उनकी यहाँ गिनती नहीं गिनी है। आहाहा! आत्मा चैतन्यमूर्ति भगवान अनन्त गुणगम्भीर, ऐसा अनन्त गुण का गोदाम प्रभु आत्मा का जहाँ ज्ञान होता है... आहाहा! तब उसे अज्ञान और मिथ्यात्व का नाश होता है और इसलिए उस मिथ्यात्व का नाश होने पर उसे राग-द्वेष होता है, उसका वह कर्ता नहीं होता। थोड़ा राग-द्वेष होता है परन्तु उसका कर्ता नहीं होता। इसलिए उसे अज्ञानभाव से बँधते जो कर्म, वह उसे बँधते नहीं। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है। एक तो बाहर की विभूति पैसा, स्त्री, पुत्र, धूल, मकान, वह सब बाहर की श्मशान की विभूति है। उसकी चमक में आकर्षित होकर बेचारा पड़ा है, मूढ़ होकर मर गया है। आहाहा!

जागती ज्योति चैतन्य भगवान! आहाहा! उसके स्वभाव को तो जाना नहीं, अनुभव नहीं किया, आदर नहीं किया और अज्ञानभाव से स्वरूप के अज्ञान से बाहर की विभूति, संसार की यह जो श्मशान की चमक दिखती है, (जैसे) श्मशान में हड्डियों की चमक

दिखे, वैसी यह सब बाहर की चमक है। मकान और स्त्री, पुत्र और पैसा... अरबोंपति को पैसा और धूल... आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु : अमेरिका के लोग कहते हैं कि हमें शान्ति नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है कहाँ? धूल में वहाँ अरबोंपति है, शान्ति जरा भी नहीं। फिर मुम्बई में आकर यह ढ़ोंग करते हैं। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण। मुम्बई में आते हैं न! देखे हैं न बाबा! वह सब कृत्रिम है। आहाहा! वहाँ अरबोंपति है। कितना माला? पचास-पचास माला का बड़ा बंगला। ओहोहो! आहाहा! होवे, चाहे जितना ऊँचा ले जाओ। पचास-पचास तो यहाँ मुम्बई में है न! जमीन थोड़ी हो, तब ऐसे ऊँचाई ऊपर करे और बस्ती बढ़ावे। ऐसे समाये नहीं, फिर ऐसे समाये। अरे रे! ऐसा मनुष्यपना मिला, परन्तु उसमें तूने आत्मा को नहीं जाना, प्रभु! आहाहा! अनन्त बार ऐसा मनुष्यपना मिला। प्रभु! तुझे पहला (मिला) नहीं है। अनन्त बार मनुष्यरूप से अरबोंपति हुआ है। आहाहा! आहाहा! तीन तो अपने यहाँ देखे न! शान्तिलाल खुशाल!

मुमुक्षु : शान्तिलाल खुशाल तो बहुत बुद्धिवाला था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धिवाला लावे, धूल भी नहीं। बुद्धिवाले बहुत हों तो भी भटकते हैं। पैसा आता है, वह तो पूर्व के पुण्य के परमाणु पड़े हों। ये अपने तीन तो बड़े देखे न! शान्तिलाल खुशाल, अपने पाणासणावाला दशाश्रीमाली, दो अरब चालीस करोड़। मर गया। अभी लड़का मुम्बई में आया था। दर्शन करने आया था। उस लड़के ने ख्रिस्ती से विवाह किया है। पैसा दो अरब चालीस करोड़! मस्तिष्क फट गया (मान चढ़ गया)। दर्शन करने आया था। ऐसा बोला, महाराज! मेरे पिता मर गये हैं, परन्तु उन्हें आपके पास आने का भाव था।

अपने शाहूजी, दिल्ली, चालीस करोड़। यहाँ आते थे न, आते हैं न! अभी मर गये, गुजर गये, उसमें-धूल में हुआ क्या? तुम्हारा सेठ, रामलाल। पचास करोड़। उसके पास पचास करोड़ हैं। मुम्बई में आया था दर्शन करने आया था, वैष्णव है, महिलाएँ सब अपने श्वेताम्बर जैन हैं और घर के सब आदमी वैष्णव। ऐसा धर्म! महिलाओं को प्रेम (था)। उन्हें कुछ धूल-धाणी और भा-पाणी! उसके पास पचास करोड़ रुपये हैं। आहाहा! चारों

ओर मकान और बँगले। दुनिया पागल, उसे सेठ कहकर (बुलाती है)। ओहोहो! तुम्हारा सेठ था। उसमें यह नौकर था न! आहाहा! प्रभु! यह बड़ा सेठ-श्रेष्ठ तो यह भगवान है न! अरे! इसके अज्ञान के कारण राग-द्वेष-मोह का कर्ता होकर, पुराने कर्म को निमित्त होकर नये कर्म बँधते हैं, भाई! आहाहा!

इसलिए मिथ्यादृष्टि के अर्थात् अज्ञानी के ही रागद्वेषमोहरूप आस्रव होते हैं। देखो! यह मिथ्यात्व सम्बन्धी के गिनना है, हों! मिथ्यादृष्टि अर्थात् चैतन्य भगवान को भूलकर परवस्तु मेरी है, जो इसमें स्वयं नहीं, वह इसमें नहीं, स्त्री में आत्मा नहीं, आत्मा स्त्री में नहीं। तथापि स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, पैसे मेरे, इज्जत मेरी (करते हैं)। मार डाला! सब 'मेरा' खड़ा करके मर गया। आहाहा! उस मिथ्यादृष्टि अज्ञानी को ही राग-द्वेष-मोहरूप आस्रव होता है, ज्ञान को नहीं - ऐसा कहते हैं। ज्ञानी को रागादि हों, वे थोड़े हैं, अल्प हैं, उनकी यहाँ गिनती नहीं है। अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष और मिथ्यात्व की यहाँ बात है। यह श्लोक यहाँ पूरा हुआ।

गाथा–१६६

अथ ज्ञानिनस्तदभावं दर्शयति –

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।
संते पुव्व–णिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो।।१६६।।

नास्ति त्वास्रव–बन्धः सम्यग्दृष्टेरास्रव–निरोधः।
सन्ति पूर्व–निबद्धानि जानाति स तान्यबध्नन्।।१६६।।

यतो हि ज्ञानिनो ज्ञानमयैर्भावैरज्ञानमया भावाः परस्परविरोधिनोऽवश्यमेव निरुध्यन्ते, ततोऽज्ञान–मयानां भावानां रागद्वेषमोहानां आस्रवभूतानां निरोधात् ज्ञानिनो भवत्येव आस्रवनिरोधः।

अतो ज्ञानी नास्रवनिमित्तानि पुद्गलकर्माणि बध्नाति, नित्यमेवाकर्तृत्वात्, तानि नवानि न बध्नन् सदवस्थानि पूर्वबद्धानि ज्ञानस्वभावत्वात्केवलमेव जानाति।।१६६।।

अब यह बतलाते हैं कि ज्ञानी के उन आस्रवों का (भावास्रवों का) अभाव है:–

सद्दृष्टि को आस्रव नहीं, नहिं बन्ध, आस्रवरोध है।
नहिं बाँधता जाने हि पूर्वनिबद्ध जो सत्ताविषैं।।१६६।।

गाथार्थ : [सम्यग्दृष्टेः तु] सम्यग्दृष्टि के [आस्रवबन्धः] आस्रव जिसका निमित्त है ऐसा बन्ध [नास्ति] नहीं है, [आस्रवनिरोधः] (क्योंकि) आस्रव का (भावास्रव का) निरोध है; [तानि] नवीन कर्मों को [अबध्नन्] नहीं बाँधता हुआ [सः] वह, [संति] सत्ता में रहे हुए [पूर्वनिबद्धानि] पूर्वबद्ध कर्मों को [जानाति] जानता ही है।

टीका : वास्तव में ज्ञानी के ज्ञानमय भावों से अज्ञानमय भाव अवश्य ही निरुद्ध–अभावरूप होते हैं क्योंकि परस्पर विरोधी भाव एकसाथ नहीं रह सकते; इसलिए अज्ञानमय

भावरूप राग-द्वेष मोह जो कि आस्रवभूत (आस्रवस्वरूप) हैं, उनका निरोध होने से, ज्ञानी के आस्रव का निरोध होता ही है। इसलिए ज्ञानी, आस्रव जिनका निमित्त है ऐसे (ज्ञानावरणादि) पुद्गलकर्मों को नहीं बाँधता-सदा अकर्तृत्व होने से नवीन कर्मों को न बाँधता हुआ सत्ता में रहे हुए पूर्वबद्ध कर्मों को, स्वयं ज्ञान-स्वभाववान् होने से, मात्र जानता ही है। (ज्ञानी का ज्ञान ही स्वभाव है, कर्तृत्व नहीं; यदि कर्तृत्व हो तो कर्म को बाँधे, ज्ञातृत्व होने से कर्मबन्ध नहीं करता।)

भावार्थ : ज्ञानी के अज्ञानमय भाव नहीं होते और अज्ञानमय भाव न होने से (अज्ञानमय) राग-द्वेष-मोह अर्थात् आस्रव नहीं होते और आस्रव न होने से नवीन बन्ध नहीं होता। इस प्रकार ज्ञानी सदा ही अकर्ता होने से नवीन कर्म नहीं बाँधता और जो पूर्वबद्ध कर्म सत्ता में विद्यमान हैं, उनका मात्र ज्ञाता ही रहता है।

अविरतसम्यक्दृष्टि के भी अज्ञानमय राग-द्वेष-मोह नहीं होता। जो मिथ्यात्व सहित रागादि होता है, वही अज्ञान के पक्ष में माना जाता है, सम्यक्त्वसहित रागादिक अज्ञान के पक्ष में नहीं है। सम्यक्दृष्टि के सदा ज्ञानमय परिणमन ही होता है। उसको चारित्रमोह के उदय की बलवत्ता से जो रागादि होता है, उसका स्वामित्व उसके नहीं है; वह रागादि को रोग समान जानकर प्रवर्तता है और अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें काटता जाता है। इसलिए ज्ञानी के जो रागादि होता है, वह विद्यमान होने पर भी अविद्यमान जैसा ही है। वह आगामी सामान्य संसार का बन्ध नहीं करता, मात्र अल्प स्थितिअनुभागवाला बन्ध करता है। ऐसे अल्प बन्ध को यहाँ नहीं गिना है।।१६६।।

इस प्रकार ज्ञानी के आस्रव न होने से बन्ध नहीं होता।

गाथा - १६६ पर प्रवचन

अब यह बतलाते हैं कि ज्ञानी के उन आस्रवों का (भावास्रवों का) अभाव है:- क्या कहते हैं ? जो धर्मी है, जिसे आत्मज्ञान होता है, मैं तो आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूपी पूर्णानन्द का सागर... आहाहा! मुझमें क्या कमी है ? वह (भक्ति) आयी थी न ? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम' पर की आश, हे प्रीतम-प्रिय नाथ! तुझमें क्या कमी है ? और तुझमें क्या नहीं भरा है ?

'किस बातें अधूरा?' प्रभु! तू किस बात से अधूरा है? कहाँ, झपट्टे तूने कहाँ मारे? आहाहा! तेरे पूर्ण आत्मा के स्वभाव से भरपूर भगवान अन्दर पूर्ण है न! किस बात से अधूरा है, वह तू पर में झपट्टे मारता है? मुझे पैसा चाहिए और स्त्री चाहिए और विषय चाहिए, भोग चाहिए, पुत्र (चाहिए).. आहाहा! अरे रे! इसने आत्मा को मार डाला। जीवित ज्योति अनन्त गुण का धनी, उसका अनादर किया और जिसमें आत्मा नहीं, ऐसी चीज़ को मेरी है, ऐसा मानकर आदर किया। आहाहा! अरे रे!

अब यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी को यह राग-द्वेष और मोह अज्ञान के कारण होते थे। ज्ञानी को वे भावास्रव नहीं होते। यह क्या कहा? जिसे आत्मज्ञान होता है, यह आत्मा भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा अनन्त गुण का भण्डार अन्दर आत्मा है। वह जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा, भगवत्स्वरूप आत्मा अन्दर है। आहाहा! ऐसे भगवत्स्वरूप प्रभु का जिसे भान है, उसे भावास्रव अर्थात् अज्ञान से होनेवाले राग-द्वेषभाव नहीं होते। इसलिए उसे पुराने कर्म नये बन्धन का कारण नहीं होता। उसे बन्धन ही नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें!

भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर, किस बात से (तू) पूरा नहीं है? किस बात से तू अधूरा है? प्रभु! आहाहा! ज्ञान से पूरा, आनन्द से पूरा, शान्ति से पूरा, स्वच्छता से पूरा, प्रभुता से पूरा। ऐसी अनन्त शक्ति से प्रभु तू पूरा भगवान अन्दर है। ऐसा जिसे पूरा परमात्मस्वभाव (लक्ष्य में आया)। परमात्मा अर्थात् स्वयं, हों! उसका जिसे ज्ञान हुआ, उसका जिसे आदर हुआ, उसे मिथ्यात्व सम्बन्धी जो आस्रव होता था—पुण्य-पाप के भाव, वे उसे नहीं होते। आहाहा! यहाँ तो मिथ्यात्व, वह संसार और सम्यक्त्व, वह मोक्ष, दो बातें हैं। फिर दूसरी बातें। आहाहा!

धर्मी—ज्ञानी को; ज्ञानी अर्थात् धर्मी को। धर्मी अर्थात्? अपने में जो अनन्त गुण-धर्म स्वभाव से भरपूर भगवान, उसके सन्मुख होकर राग और निमित्त और पर्याय से विमुख होकर भगवान अपने पूर्ण स्वरूप को जिसने जाना, ऐसा जो धर्मी अर्थात् सम्यक्त्वी आहाहा! उस सम्यक्त्वी को यहाँ ज्ञानी कहा है और ज्ञानी को आस्रव का अर्थात् अज्ञानभाव से जो पुण्य-पाप का कर्ता होकर जो आस्रव होता था, वह आस्रव उसे नहीं होता।

आस्रव अर्थात् नये कर्म के आने का कारण। आस्रवना। जैसे नाव में छिद्र पड़े और

पानी आवे, वैसे भगवान आत्मा में अपने स्वरूप के अज्ञानभाव से छिद्र पड़ा है, इसलिए उसे विकारभाव का भावास्रव होता है। धर्मी को उस भावास्रव का छिद्र मुँद जाता है। आहाहा! भले वह चक्रवर्ती के राज्य में बैठा हो। यहाँ समकिती की बात लेनी है, आहाहा! परन्तु फिर भी अन्दर चैतन्य भगवान का उसे भान है। उस स्वरूप के भान के आदर के समक्ष उसे कोई चीज़ कीमती नहीं लगती। चक्रवर्ती का राज भी समकिती को कीमती नहीं लगता। आहाहा! अपने अमूल्य ऐसे भगवान की जहाँ कीमत लगायी, ऐसा जो धर्मी, (वह) भले संसार में हो, परन्तु उसे अपने आत्मा की कीमत के समक्ष दूसरी किसी चीज़ की कीमत उसे दिखायी नहीं देती। आहाहा!

धर्मी को, ज्ञानी अर्थात् धर्मी। धर्मी अर्थात् चौथे गुणस्थानवाला समकिती। जिसे राग से भिन्न पड़कर आत्मा के स्वरूप का वेदन, भान हुआ है, ऐसा धर्मी। धर्म की पहली सीढ़ीवाला, धर्म की पहली श्रेणीवाला। उस **ज्ञानी के उन आस्रवों का..** अर्थात् पुण्य-पाप के **(भावास्रवों का) अभाव है, यह बतलाते हैं..** १६६ गाथा

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।
संते पुव्व-णिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो।।१६६।।

नीचे हरिगीत

सद्दृष्टि को आस्रव नहीं, नहिं बन्ध, आस्रवरोध है।
नहिं बाँधता जाने हि पूर्वनिबद्ध जो सत्ताविषैं।।१६६।।

आहाहा! वापस इसमें यह लिया। पूर्व में जो बँधा हुआ है, भले सत्ता पड़ी हो, कहते हैं। उसे वह जानता है। आहाहा! उसमें वह मिथ्यात्वसहित जुड़ता नहीं है। आहाहा! भगवान का मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! सुख का पन्थ यह, सुख के पन्थी, सुख का पन्थ कोई अलौकिक है! बाकी यह सब दुःख के पन्थ में लग गये हैं। पूरी दुनिया दुःख के रास्ते में लग गयी है। आहाहा! सुख का पन्थ तो इन परमात्मा ने कहा, वह एक ही है। वह आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसके स्वभाव का भान करके उसमें जाए, वह सुख का पन्थ है। आहाहा! यह बाहर के सुख की बात नहीं, हों! बाहर की धूल सुख नहीं है, वह तो दुःख है। अरबोंपति हो वह दुःखी बड़ा भिखारी प्राणी बेचारा माँगता है, माँगता है।

यह लाओ, यह लाओ, यह लाओ। पैसा लाओ, इज्जत लाओ, स्त्री लाओ, स्त्री एक होवे और लड़का न हो तो दूसरी लाओ, भिखारी एक के बाद एक माँगा ही करता है, माँगण!

मुमुक्षु : बनिया माँगते होंगे? बनिया नहीं माँगते।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी नहीं माँगता। बनिया अर्थात्? बनिया तो बड़ा भिखारी।

मुमुक्षु : ब्राह्मण माँगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! बनिया बड़ा भिखारी! उसने कहा नहीं? अभी आया नहीं? जापान में से, जापान का एक लेख आया है। कोई बड़ा ऐतिहासिक है, ६७ वर्ष की उम्र है। बड़ा ऐतिहासिक! लाखों पुस्तकें (उसने पढ़ी।) उसने कहा कि भाई! जिनधर्म किसे कहना? अनुभूति, जिनधर्म है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका अनुभव करना, वह जैनधर्म है, परन्तु फिर उसने जरा लिखा, किन्तु ऐसा जैनधर्म बनियों को मिला। बनिये व्यापार में पाप के कारण निवृत्त नहीं होते। ऐसा बेचारे ने लिखा है। जापान से लेख आया है। ऐसा जैनधर्म बनियों को मिला और बनिये व्यापार के कारण पूरे दिन पूरी होली सुलगती है! यह लाओ और यह दिया और यह ग्राहक आया और यह दिया, यह माल हो गया, मुम्बई से नया लो, पुराना हो गया है और नया लाओ। इस भाव आएगा, इस भाव (जाएगा)। अरे! पूरे दिन होली सुलगती है। अर र र! उसमें से इसे निकलना...

यहाँ कहते हैं कि वह सब हो, परन्तु फिर भी जिसे आत्मज्ञान हुआ.. आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का सागर और अनन्त गुण का भण्डार (विराजता है), ऐसा स्वसन्मुख होकर आत्मज्ञान हुआ, उस ज्ञानी को भावास्रव अर्थात् मिथ्यात्वसहित होनेवाले राग-द्वेष के भाव उसे है नहीं। आहाहा! ऐसा बताते हैं। है न? आ गया न यह? **सद्दृष्टि को आस्रव नहीं, नहिं बन्ध, आस्रवरोध है। नहिं बाँधता जाने हि पूर्वनिबद्ध जो सत्ताविषैं।**

इसकी टीका। टीका है न इस ओर? **वास्तव में ज्ञानी के..** जिसे आत्मा की कीमत जगी है... आहाहा! मेरी चीज़ अमूल्य और उसकी इसने कीमत आँकी। आहाहा! अमूल्य हीरा प्रभु चैतन्य, उसकी जिसने अन्दर जाकर कीमत आँकी है। आहाहा! उसका जिसे ज्ञान हुआ, उस **वास्तव में ज्ञानी के ज्ञानमय भावों से..** उसे तो आत्मा के ज्ञान-

दर्शन आनन्द के भाव से। **अज्ञानमय भाव अवश्य ही निरुद्ध-अभावरूप होते हैं..** यहाँ तो इतनी ही बात है। अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव, वे ज्ञानी को नहीं होते। आहाहा!

वास्तव में ज्ञानी.. अर्थात् आत्मज्ञानी को। भले वह गृहस्थाश्रम में पड़ा हो परन्तु जिसे आत्मज्ञान हुआ है, ऐसे ज्ञानी को **ज्ञानमय भावों से..** अपने ज्ञान आनन्द और शान्ति के भाव से। **अज्ञानमय भाव..** ऐसे जो राग-द्वेष और मिथ्यात्व, वे रुक जाते हैं। निरोध को प्राप्त होते हैं। **निरुद्ध-अभावरूप होते हैं..** आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का सागर नाथ प्रभु, ऐसे आत्मा का जिसे अन्तर्मुख होकर बाहर की कीमत, सब विभूति की कीमत छोड़कर, अन्तर की विभूति की कीमत जिसे अन्तर से जागृत हो गयी है... आहाहा! ऐसा जो धर्मी, उसे अज्ञानमय भाव अर्थात् मिथ्यात्वभाव। राग ठीक है और राग में लाभ है, ऐसा जो अज्ञानमय भाव, (वह) अवश्य रुक जाता है, अवश्य अज्ञान का अभाव होता है। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, बापू! आहाहा! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। वे तो कहे, कुछ खबर नहीं होती, सामायिक करो, प्रोषध करो, प्रतिक्रमण करो। परन्तु कहाँ था अब? अभी आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं हो, यह तेरी सामायिक आयी कहाँ से? आहाहा! सामायिक में तो समता का लाभ आता है।

सामायिक का अर्थ क्या? समता का लाभ, वीतरागपने का लाभ। परन्तु वीतरागपने का लाभ किसे होगा? जो आत्मा वीतरागस्वरूप जिनस्वरूप है, ऐसी जिसे दृष्टि और अनुभव हुआ है, उसे उसमें स्थिरता की सामायिक आती है। आहा! अभी वस्तु की खबर नहीं होती, (वहाँ) तुझे सामायिक आयी कहाँ से? प्रोषध आये और प्रतिक्रमण किया और... धर्म का प्रतिक्रमण किया। धर्म से विमुख हुआ! विकार से विमुख होना चाहिए, मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण चाहिए... आहाहा!

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण अर्थात्? कि पुण्य और पाप हैं, उनमें मुझे लाभ है - ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और पुण्य के फलरूप से यह बाहर में सामग्री धूल मिले, उससे मैं बड़ा हूँ, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव.. आहाहा! उसका जिसे नाश होता है, उसे यहाँ ज्ञानी और समकिती कहा जाता है। उसे यहाँ अज्ञानभाव का नाश होता है। आहाहा! ऐसी बातें!

क्योंकि परस्पर विरोधी भाव एकसाथ नहीं रह सकते;.. क्या कहते हैं यह? कि जिसे इस आत्मा चिदानन्द भगवान का भान हुआ, उसे तो वह आत्मामय भाव होगा। शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता, आनन्द, वह भाव होगा। उसे पुण्य-पाप के भाव, वे तो उससे विरुद्ध भाव हैं। मिथ्यात्वसहित के पुण्यभाव तो विरुद्ध हैं, अतः एक स्थान में दो भाव नहीं रह सकते। आहाहा! इसे आत्मा का ज्ञानमय भाव भी हो और अज्ञानमय राग-द्वेष के भाव भी हों, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा!

क्योंकि परस्पर विरोधी.. परस्पर विरोधी, समझ में आया? कि राग-द्वेष के परिणाम, वे मेरे हैं और मैं कर्ता हूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह अज्ञानभाव और एक ओर आत्मा ज्ञानस्वरूप है और मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, मैं राग का कर्ता भी नहीं, राग मुझमें है ही नहीं, राग से मुझे लाभ है नहीं, ऐसा जो आत्मा का ज्ञान हुआ—ऐसे आत्मज्ञान के समय उसे उससे विरुद्ध मिथ्यात्व के राग-द्वेष के करने के भाव, यह मिथ्यात्वभाव नहीं होता। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहती। आहाहा! जिसे यह भगवान चैतन्य प्रभु अन्दर चमत्कारिक चीज़ पड़ी है, महाप्रभु! आहाहा! जिसके चैतन्य के चमत्कार के समक्ष इन्द्रों का इन्द्रासन सड़े हुए तिनके जैसा लगे। इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली मर गयी हो, ऐसा लगे। आहाहा! उसके भोग और उसके सुख ज्ञानी को ऐसे लगते हैं। अज्ञानी को तो एक जरा कुछ अनुकूलता पाँच-पच्चीस लाख मिले, स्त्री ठीक (मिली), वहाँ (ऐसा मान बैठता है कि) हम सुखी हैं। धूल में भी नहीं है। मर गया, सुन न!

भगवान अन्दर चैतन्य ज्योति विराजता है। उसका तूने अनादर किया है। अनादर किया अर्थात् तूने उसकी हिंसा की है और जो तुझमें नहीं है, पुण्य और पाप के भाव, उनका कर्ता होकर उसे-विकार को तूने जीवित रखा है। चेतन जीवित है, उसे तूने मार डाला। आहाहा! अरे! ऐसा सुनना कहाँ मिले? बापू! क्या हो? आँखें बन्द हो जाएगी, भाई! चौरासी के अवतार में कहीं भटकने चला जाएगा। आत्मा तो नित्य है। देह छूटने से कहीं आत्मा नाश हो, ऐसा नहीं है। अज्ञानरूप से भव निकाले, जाकर भटकेगा चौरासी में कहीं! कौआ, कुत्ता, कन्थवा, सिंह, बाघ में जन्म लेगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ज्ञानी के ज्ञानमय भाव के साथ अज्ञानी के राग-द्वेष के कर्ता के

अज्ञानभाव दोनों एक जगह नहीं रह सकते। समझ में आया? आहाहा! **परस्पर विरोधी भाव एकसाथ..** परस्पर विरोधी (अर्थात्) आत्मा चैतन्य आनन्द का ज्ञान और भान हुआ, वहाँ ज्ञानमय शुद्धता के भाव हुए और अज्ञानभाव से तो राग-द्वेष का कर्ता होता है और वह राग-द्वेषभाव होता है। वह दोनों एक स्थान में नहीं रह सकते। ज्ञानमय भाव में अज्ञानमय भाव नहीं और अज्ञानमय भाव के समय ज्ञानमय भाव नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का? पहला तो बाहर से सब प्रसन्न हो, ऐसे व्रत पालो, भक्ति करो, अपवास करो, लोग प्रसन्न होते हैं बेचारे! अरे रे! यह सब अज्ञानभाव के पोषक हैं। आहाहा!

परस्पर विरोधी.. ऐसा कहा न? अज्ञान स्वरूप के अज्ञानरूप से अज्ञान से राग-द्वेष (का) कर्ता होता था, वह आत्मा के ज्ञानभाव में ज्ञानभाव का कर्ता होकर रागभाव का कर्ता नहीं होता। इसलिए एक स्थान में दो भाव नहीं हो सकते। आहाहा!

इसलिए अज्ञानमय भावरूप राग-द्वेष-मोह.. जो अज्ञान से हुए अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष और मिथ्यात्व **जो कि आस्रवभूत..** है। वे स्वयं भावास्रव ही हैं। स्वरूप का अज्ञान और मिथ्यात्वभाव, राग और द्वेष का कर्ता हो, वह मिथ्यात्वभाव स्वयं ही आस्रव है। नये कर्म का कारण वह भाव ही है। आहाहा! **जो कि आस्रवभूत (आस्रवस्वरूप) हैं, उनका निरोध होने से,...** ज्ञानी को वे आस्रवभूत अज्ञानभाव के राग-द्वेष तो रुक गये हैं। आहाहा! जान लिया कि मेरा प्रभु तो आनन्द है और यह राग तो विकार है। आहाहा! वहाँ बात रुक गयी। अज्ञानभाव था, (वह) वहाँ रुक गया और ज्ञानमय चैतन्य का भाव निर्मलानन्द प्रभु प्रगट हुआ। आहाहा!

जिसे अन्तर चैतन्य का भान हुआ, वह बापू! अलौकिक बातें, भाई! वह कोई बाह्य क्रियाकाण्ड से मिले, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! कि बहुत व्रत करें और बहुत अपवास करें (तो) समकित हो जाए। वह तो सब अज्ञानभाव, कर्ता (भाव है), उससे समकित नहीं होता। आहाहा! प्रभु! मार्ग अलग है। यह आत्मा अन्दर परिपूर्ण परमात्मस्वरूप विराजमान है। 'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा, वह अन्दर परमात्मस्वरूप ही है। उसका स्वभाव परमात्मस्वरूप है, प्रभु! आहाहा! कैसे जँचे! दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब भाईसाहब को पाखाने में दस्त उतरे, उसे अब ऐसा कहना कि तू प्रभु है इतना! किस गज से नापे? आहाहा! आहाहा!

अज्ञानमय भावरूप राग-द्वेष मोह जो कि आस्रवभूत (आस्रवस्वरूप) हैं.. देखा? वह आस्रवभूत है तो सही। स्वरूप का अज्ञान और मिथ्यात्वभाव और जो मिथ्यात्वभाव राग-द्वेष का कर्ता होता है, वे राग-द्वेष और वह मिथ्यात्वभाव, वही आस्रव है, वही बन्ध का कारण है। आहाहा!

उनका निरोध होने से, ज्ञानी के आस्रव का निरोध होता ही है। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी समृद्धि का भान हुआ। मुझमें पूर्ण आनन्द और पूर्ण गुण भरे हैं, ऐसा सम्यक्-सत्यदर्शन, सच्ची पूर्ण वस्तु है, उसका अनुभवदर्शन होने पर उसे आत्मा की ऋद्धि जो अन्दर अनन्त है, उसका नमूना उसे पर्याय में आया। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था। इसलिए उसे **आस्रव का निरोध होता ही है।** अज्ञान से उत्पन्न हुआ ऐसा जो राग-द्वेषभाव, वह उसे होता नहीं।

इसलिए ज्ञानी, आस्रव जिनका निमित्त है, ऐसे (ज्ञानावरणादि) पुद्गलकर्मों को नहीं बाँधता.. लो! आस्रव जिसे निमित्त है। नये कर्म को आस्रव निमित्त है, यहाँ (यह) लेना है। ऐसे मिथ्यात्व, राग-द्वेष का कर्ता होता है। दया, दान के परिणाम का कर्ता हो, वह मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि वह राग है। आहाहा! उस मिथ्यादृष्टि को जो राग-द्वेष और अज्ञानभाव थे, वे ज्ञानी को नहीं हैं। इसलिए **आस्रव जिनका निमित्त है, ऐसे (ज्ञानावरणादि) पुद्गलकर्मों को नहीं बाँधता..** वह आठ कर्म को नहीं बाँधता अथवा वह अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष और मिथ्यात्व उसे नहीं होता। आहाहा!

सदा अकर्तृत्व होने से.. धर्मी तो, राग का और दया-दान का विकल्प आवे परन्तु उसका कर्ता नहीं होता; उसका जाननेवाला-देखनेवाला रहता है। आहाहा! **सदा अकर्तृत्व होने से नवीन कर्मों को न बाँधता हुआ सत्ता में रहे हुए पूर्वबद्ध कर्मों को, स्वयं ज्ञान-स्वभाववान् होने से,..** आहाहा! शुद्ध ज्ञान, आनन्द है, वह मैं हूँ— ऐसा धर्मी को पहली श्रेणी में भान होता है। आहाहा! उसके भान में उसे **पूर्वबद्ध कर्मों को, स्वयं ज्ञान-स्वभाववान् होने से, मात्र जानता ही है।** देखा? वह पूर्व कर्म जो था, उसका संसर्ग करता है, अज्ञानी परिचय करता है, उस पर लक्ष्य (करता है)। यहाँ लक्ष्य छोड़ देता है। यह (ज्ञानी) पुराने कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं करता। अपने स्वरूप के साथ सम्बन्ध किया है। इसलिए पूर्व का जो कर्म है, उसे **मात्र जानता ही है।**

(ज्ञानी का ज्ञान ही स्वभाव है, कर्तृत्व नहीं;..) धर्मी, राग और दया, दान के परिणाम का भी कर्ता नहीं है। आहाहा! ऐसा गले उतरना (कठिन पड़ता है)। **(ज्ञानी का ज्ञान ही स्वभाव है, कर्तृत्व नहीं; यदि कर्तृत्व हो तो कर्म को बाँधे,..)** पर की, शरीर की, वाणी की क्रिया कर सकता हो और पुण्य-पाप के परिणाम भी मेरे कर्ता से होते हैं, ऐसी जिसकी कर्ताबुद्धि पड़ी है... आहाहा! वह तो नये कर्म बाँधता है। ज्ञानी का ज्ञानस्वभाव है, कर्तास्वभाव नहीं। **(कर्तृत्व हो तो कर्म को बाँधे,...)** ये पुण्य-पाप और पर का कर्ता होवे तो नये कर्म बाँधे। **(ज्ञातृत्व होने से कर्मबन्ध नहीं करता।)** आहाहा! बहुत सरस!

पहली श्रेणी का-चौथे गुणस्थान में समकिती, धर्म की पहली सीढ़ी वाला, ऐसा समकिती ही पहला। पाँचवाँ गुणस्थान वह तो और आगे है। श्रावक किसे कहना? मुनि, वह तो आगे बहुत कठिन चीज़ है। यह तो अभी सम्यग्दृष्टि जीव (की बात है)। आहाहा! राग और पर की क्रिया का कर्ता नहीं होता और अपने ज्ञानस्वरूप में ज्ञाता-दृष्टा रहता है, इसलिए उसे कर्म नहीं बँधते। **(ज्ञातृत्व होने से कर्मबन्ध नहीं करता।)** विशेष कहा जाएगा, लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)